हल

—पंकज बिष्ट

उम्मेद सिंह खेतों को पार करता हुआ जैसे ही गाँव में प्रविष्ट हुआ उसकी नजर सीधे भागुली के मकान के बाहर की भीड़ पर पड़ी। स्थिति की गम्भीरता के आभास मात्र ने उसे उद्वेलित कर दिया। पटांगण के भिडे पर बैठे लोगों में एक हल्की-सी हलचल हुई। कोई उठकर उसके नजदीक आया और कुछ कहता हुआ, जो उम्मेदसिंह की समझ में बिल्कुल नहीं आया, सीधे सीढ़ियों 'मलखन' में ले गया।

कोने में शिबिया लिटाया हुआ था। एक मैली और बहुत ही पुरानी रजाई से, जिसकी रुई जगह-जगह गोला बन गई थी, उसे कस कर

ढँका हुआ था।साथ ही गाँव की कुछ औरतों के बीच भागुली बैठी थी। भागुली ने सिर्फ एक बार उम्मेदसिंह की ओर देखा और फिर डॉक्टर हीराबल्लभ आर. एम. पी. को देखने लगी, जो इंजक्शन लगाने की तैयारी कर रहा था। निहोणी के धीरे- धीरे होनी में बदलते जाने की सम्भावना से वातावरण इतना बोझिल था कि सामान्य शब्द भी कानों में इस तरह टकरा रहे थे जैसे आतंक से भरी कोई चीख। वह भी औरतों से थोड़े फासले पर बैठ गया। शिबिया की इकहरी साँस पूरे मलखन में इस तरह काँप रही थी जैसे रिकार्ड की सुई खाली लीक पर घर्र-घर्र करने लगती है। उम्मेदसिंह ने हौले से उसके माथे को छुआ। शिबिया ने कोई प्रतिक्रिया नहीं की। उसकी हालत ने उम्मेदसिंह को बेचैन कर दिया। भागुली के बच्चों में शिबिया उसे सबसे प्यारा

था। दिल हुआ कहे, "शिबिया कैसा है रे ?"

तभी भागुली ने कहा, "ओ शिबि, देख तेरे मामा आए हैं।" पर शिबिया की आँखों की पुतलियाँ कहीं थम नहीं रहीं थीं। भागुली का गला भर आया। डबडबा आई आँखों को उसने चुपके से पोंछ लिया।

इकहरी साँसों के बीच का अंतराल बढ़ रहा था। शिबिया का सांवला रंग कुछ ज्यादा ही गहरा हो गया था। वह रोज की अपनी स्काउटिंग वाली गंदी और जगह-जगह स्याही लगी खाकी कमीज़ ही पहने था। सदा काले रहने वाले उसके होंठ सूखे और कुछ सूजे-से नजर आ रहे थे।

बाँए गाल पर उभर आये निशान के बारे में उम्मेदसिंह अपनी जिज्ञासा दबा नहीं पाया। भागुली ने उसे किसी तरह बतलाया, "सुबह

बैल लेकर जा रहा था..."

..... अरे, न बाहे जाते दो खेत तो कौन-सा प्रलय हो जाता। वैसे ही साली जमीन कौन-सा सोना उगल रही है। साले चौदह साल के बच्चे को ऐसे दौड़ाते हैं जैसे कोई अपने बैल को भी नहीं दौड़ाएगा। बाप साला हर समय हाय पैसा! हाय पैसा। करता फिरता है, ये नहीं कि हल ही 'बाने' आ जाता दो दिन के लिए। साली छुट्टी भी तो मिलती होगी, ऐसी भी क्या नौकरी ठहरी!

वह अभी सोच ही रहा था कि .....।

इंजेक्शन देने के लिए शिबिया का हाथ सीधा करते हुए डाक्टर कह रहा था, "नस में सुई लगा रहा हूँ। इसके बाद फौरन रानीखेत अस्पताल ले जाना होगा, "बात उसी को लक्ष्य करके कही जा रही

थी, ''अब अगर यहाँ ग्लूकोज़ चढ़ाने का इन्तजाम हो जाता तो शायद. .....।''

डॉक्टर की बात पूरी भी नहीं हो पाई थी कि शिबिया ने एक जोर की साँस ली और चुप हो गया। डाक्टर ने हड़बड़ाकर इंजेक्शन एक ओर रखा और स्टैथस्कोप उठाकर कभी नाड़ी और कभी छाती टटोलने लगा। काफी उठक-पटक के बाद अन्ततः उसने कानों से स्टैथस्कोप की नलियां हटा लीं। शिबिया की एक ओर को लटक आई गर्दन को सीधा किया और स्थिर हो आई आँखों की पुतलियों को अँगुली से बन्द कर बाहर आ गया।

उम्मेदसिंह की समझ में कुछ नहीं आ रहा था, यह सब इतनी जल्दी कैसे और क्यों हो गया। जब घर से चला था तब उसे कल्पना

में भी आभास नहीं था कि वह जहाँ जा रहा है वहाँ एक दुर्घटना सिर्फ उसी की प्रतिक्षा में है। उसने तो इतना भर सोचा था कि कोई बच्चा बीमार होगा और पैसे की किल्लत और अकेले होने की वजह से भागुली घबरा गई होगी।

कई घंटे बाद श्मशान से लौटते हुए उसने सारी बातें सिल-सिलेवार समझने की कोशिश की थी। शिबिया सुबह हल लगाता था, दिन में घर के दूसरे छोटे-मोटे काम करता, और फिर रात को दो मील दूर जाकर देर तक रामलीला देखता। ठण्ड बढ़ने लगी थी। कपड़ों के नाम पर स्काउटिंग की स्कूली खाकी कमीज और पैंट के अलावा एक कई साल पुराना बाप का उतारा स्वैटर भी था जो उसके शरीर पर सारे साल ऐसे झूलता रहता जैसे चिड़ियों को डराने के लिए बनाए

गए बिजूका पर कपड़ा झूलता है। ठंड लगी होगी और उसने छाती पकड़ ली। ऐसे में डबल निमोनिया न होता तो क्या होता! उसका मन दुख से कुछ इस तरह बोझिल हो गया कि गाँव की चढ़ाई अंतहीन और असम्भव-सी लगने लगी।

घर पर पता चला भागुली को रोते-रोते गश आ गया है। घंटे भर से होश नहीं है। पर घंटा काफी लम्बा साबित हुआ। अगले दो दिन तक वह लगातार बेहोश रही। जब कभी जरा भी होश में आती शिबिया को पुकारने लगती। भागुली की बेहोशी से घबराकर दूसरे दिन उसने डूँगरसिंह को तार कर दिया था। शायद कल-परसों तक आ पहुँचे। पर अब लगता है कि जैसे गलती हो गई हो। आज भागुली सुबह से काफी ठीक थी और बीच में एक बार होश आने पर काफी देर ठीक-ठाक

बातें करती रही थी। डाक्टर हीराबल्लभ आए थे। देखकर बोले, "ठीक है अब। चिन्ता की कोई बात नहीं। बस सोने की दवा दे रहा हूँ, शाम तक बिल्कुल चंगी हो जाएगी।"

बीच में जब भागुली की तंद्रा टूटी थी तो वह उसके पास जा बैठा था। धीरे-धीरे उसने ढाँढस बँधाना शुरु किया, "अब ऐसे कहीं चलता है भला। बाल-बच्चों का मुँह देख! हिम्मत हारने से जिन्दगी नहीं चलतीहै।"

वैसे भी गाँवों में बच्चों का मरना कोई असामान्य बात तो थी नहीं। स्वयं भागुली के ही न जाने कितने बच्चे मरे थे पर उसके इस तरह बेसुध हो जाने से ही शायद लोग कुछ हैरान थे रह-रह कर समझाते, अभी तो तेरे तीन बेटे हैं, उन्हें देख! फिर बच्चों का क्या है, जान बची

चाहिए और.....।

कहने को तो उम्मेदसिंह भी कह गया कि धीरज रखना चाहिए पर वह लोगों की इस तरह की बातों से स्वयं ही हिल जाता है। ठीक है, और पैदा हो सकते हैं पर चौदह साल का पाला-सैंता जवान बेटा तो नहीं मिल सकता। वह जानता था, शिबिया से भागुली को कितना प्यार था। वह उसका पहला बच्चा ही नहीं था, जाने अनजाने परिवार का मुखिया भी हो गया था। दो साल पहले शिबिया ने उसी के सामने हल जोतना सीखा था और तब वह सब कुछ खेल-खेल में ही हो गया था।

उस दिन शिबिया ने मुश्किल से किसी तरह दो-तीन चीरे मारे थे और शाम तक उसके छोटे-छोटे हाथों में 'डम्फू' जैसे छाले पड़

गये थे पर अगले साल जब वह भागुली का हल का काम निबटाने आया था तो अगली सुबह शिबिया उसके उठने से पहले ही बैल लेकर निकल चुका था और जब तक वह पहुँचा आधा खेत बाह चुका था। उसने दूर ही से देखा : पतला-दुबला मरियल-सा लड़का जिसका कद उठ नहीं पा रहा था, बैलों की तो बात रही दूर, हल के मूठ के पीछे ही छिप गया था, पर फिर भी न जाने कैसे और कब, बैल साधना सीख गया था। "रौ, रौ रे खैरा रौ! रौ रे चनिया, रौ!" बच्चे के मुँह से निकले शब्द सुबह के स्वच्छ और भीगे वातावरण में, जब धूप ओस मढ़े पेड़ों पर जगमगाती है, ऐसे गूंज रहे थे जैसे कोई तबले पर हौले-से यूं ही थाप मार दे रहा हो—कच्चे हाथों की थाप—जो तबले से अधिक हाथों की कोमलता को वातावरण में भर देती है।

उम्मेदसिंह ने नजदीक पहुँचकर एक नजर खेत को देखा और

शिबिया को गले लगा लिया था।

"क्यों रे भारत का नक्शा बना रहा है क्या?" मामा ने भानजे के सर को थपथपाते हुए पूछा था। एक तो वैसे ही पहाड़ी खेत बाँका-तिरछा, ऊपर से आड़े-टेड़े पड़े हल के चीरे। पर उम्मेदसिंह भाव-विभोर हो गया था, उस दिन। घर लौटकर उसने भागुली से कहा था, "भागुली अब अपने दुख के दिन खत्म समझ! ऐसा होनहार बेटा किसी-किसी के घर होता है।"

बड़ी खोटी किस्मत लेकर पैदा हुई ये छोकरी, उम्मेदसिंह सोचने लगा। डूंगरसिंह के घर की हालत कभी अच्छी नहीं रही। हर साल वह जाड़ों से पहले ही नीचे 'देस' चला जाता है और फिर गेहूँ की कटाई तक ही लौट पाता है। न सास-ससुर न देवर-जेठानी, घर में

भागुली खटती है। गाय, बैल, खेती और सब पर साल-दर साल पैदा होते-मरते बच्चे। उम्मेदसिंह को ठीक याद नहीं कि भागुली के अब कितने बच्चे हैं। क्या तकदीर पाई इसने भी! सबसे छोटी बहन थी तीन भाइयों की। कुछ नहीं तो उससे पंद्रह साल तो चौकस छोटी होगी और लगती कैसी है जैसे पचास लाँघ गई हो। पचास होने में तो अभी खुद उसे ही कुछ नहीं तो पाँच साल बाकी थे, पर किस्मत इसे ही तो कहते हैं। सारे भाई इसे कितना प्यार करते हैं। हर फसल में कोई न कोई बुवाई-कटाई निबटवा जाता है और डुँगरिया को कभी नहीं लगने दिया है कि वह अकेला है। बस पिछली बार ही से तो ऐसा हुआ था कि उनमें से किसी को हल के लिए नहीं आना पड़ा था। वैसे आए भी तो एक-आध दिन को। सच तो यह था कि जब तक कोई

मामा पहुँचता शिबिया छोटे-मोटे खेत बाह चुका होता था और फिर काम का नाम ही रह जाता था।

बज्जर पड़े इस पहाड़ी खेती को! कितने करतब करो और कितने ही तरह के बीज बोओ, पर ढाक के वही तीन पात! शायद ही कोई साल ऐसा होता हो, जब आराम से चार-पाँच महिने का नाज निकल पाता हो। हर साल परदेस जाओ, बाल-बच्चों से दूर, लोगों की रोटी बनाओ, बर्तन-भाँड़े माँजो, कपड़े धोओ और फिर भी बच्चे भूखे-नंगे! धिक्कार है ऐसी जिन्दगी को । इस साली 'किसानी' से तो.....।

क्या हुआ करती थी भागुली 'बोकिया' जैसी! दो गट्ठा घास दो मील चढ़ाई पर एक साँस में ऐसे ले जाती थी जैसे कोई मछली पानी में तैर रही हो। और अब देखो.....। खा गई ये साली आदमखोर जमीन

इसे जिंदा खा गई। कैसी हँसमुख थी, आज देखो किस तरह चिढ़चिढ़ाती रहती है—कभी इस बच्चे को मार तो कभी उस बच्चे को मार! कैसे हो गई होगी ये इतनी कर्कशा और कट्टर, उसे आश्चर्य होता है। जो कभी काम से घबराती नहीं थी, वही आज अपने ही आठ-आठ दस-दस साल के बच्चों से ऐसे काम लेती है जैसे 'गोरखा राज' में बेगार भी नहीं ली जाती होगी।

आज दोपहर भागुली से जब उसने कहा था, 'डूगरसिंह को तार कर दिया है एक आद दिन में आ जाएगा।' और भागुली जब काफी देर कुछ बोली नहीं थी तो उसने सोचा, शायद अभी ठीक से होश नहीं आ पाई है, पर जब भागुली ने गिनकर सिर्फ तीन शब्द कहे, 'चिट्ठी डाल देते!' तो उसे एक जबर्दस्त झटका लगा था। अब वह सोचने

लगा था कि डूगरसिंह न आए तो अच्छा हो। कुछ ही देर पहले उसे पता चला था कि चार-पाँच दिन पहले ही डूगरसिंह का मनिआर्डर आया था। उसे गए हुए भी तो कुछ ही रोज हुए हैं, अब पैसे कहाँ होंगे उसके पास। ऊपर से कच्ची नौकरी। आजकल नौकरी ढूँढ़ना कोई आसान काम है, एम.ए., बी.ए. तो टक्कर मारते-फिरते हैं। अपनी जल्दबाजी पर उसे कुछ अफसोस हुआ, पर वह भी क्या करता, अगर भागुली को ही कुछ हो जाता और कल को डूगरसिंह कहता, मुझे बता तो दिया होता, तोक्या मुँह रह जाता उसका।

धूप तापते-तापते न जाने उसे कब झपकी आ गई थी। बसन्ती ने उठाया, "ममा चहा!"

गिलास सँभालते हुए उसने पहला सवाल किया, "कैसी है री तेरी

इजा?"

"ठीक है! चाय पी रही है।"

माँ के स्वस्थ होने की खुशी बसन्ती के चेहरे पर साफ झलक रही थी। पिछले तीन दिन का असामान्य वातावरण और तनाव बच्चों के लिए सबसे अधिक कष्टकर और नुकसान देह सिद्ध हो रहा था। सबके चेहरे कुम्हला गए थे जैसे बिना पानी के पौधे! इस पर भी सबसे आश्चर्य की बात यह थी कि बच्चों ने सन्तुलन नहीं खोया था। ये १३ साल की बसन्ती चौबीसों घंटे अपनी माँ के आसपास छाया की तरह मँडराती रही थी। यद्यपि खाना आस-पास से आ जाता था, पर कब मामा को चाय देनी है और कब हुक्का, बच्चे नहीं भूले थे।

उम्मेदसिंह उठकर चाय के गिलास के साथ नुक्कड़ पर ही पहुँच

गया।

सामने सीढ़ियों पर रघुवा थैले को रस्सी से बाँधने में लगा हुआ था। मुँह तक भरे थैले को बाँधने में उसे काफी मेहनत करनी पड़ रही थी। काम खत्म कर उसने सीधे हाथ के बाजू से नाक साफ की और जैसे ही कमर सीधी की, नजर उम्मेदसिंह से जा मिली। वह हौले से मुस्कराया और बोला, "ममा तुम्हारे लिए' बीड़ी लानी है?"

"कहाँ जा रहा है तू?" उम्मेदसिंह ने पूछा।

" घट पिसाने! अभी आता हूँ।"

"घट? इस समय बीड़ी तो लानी है, पर तू लौटेगा कब!" दो मील जाना और आना, फिर पहाड़ी पनचक्कियाँ जो घंटे भर में पाँच किलो अनाज न पीसें। "अरे नहीं जाना है घट-वट। आज की रोटी हो जाएगी

या नहीं तो ....., कल सुबह चले जाना?"

"है तो पर ..." वह कुछ रुका ।

"पर क्या?"

"कुछ नहीं मंडुवा है। इजा का कहनाहै कि....।"

"नहीं, नहीं ठीक है। मंडुवा है तो क्या हुआ? क्या मैं किसी दावत में आया हूँ।" उम्मेदसिंह झटके से उठ खड़ा हुआ और रघुवा के हाथ से गेहूँ का थैला ले अन्दर चला गया।

"क्यों भागुली कैसी है?" उम्मेदसिंह ने तनाव को नियंत्रित कर दरवाजे से ही पूछा और थैली को वहीं किनारे रख दिया।

"ठीक हूँ, ददा" कहते हुए भागुली बैठने का उपक्रम करने लगी और उम्मेदसिंह के मना करते-करते भी बैठ ही गई।

रघुवा पास ही आ खड़ा हुआ था, अपनी माँ के निर्णय की प्रतीक्षा करता। भागुली बाहर की सारी बातचीत सुन ही चुकी थी। ''जाने दो ददा, आ जाएगा दिन डूबने तक!''

''अरे नहीं, तू भी क्या बात करती है, क्या मैं मंडुवा नहीं खा सकता। फिर आज भर की तो बात है, भेजना ही होगा तो कल भेज देंगे सुबह।'' वह भागुली को किसी तरह की ठेस भी नहीं पहुँचाना चाहता था।

''अभी चला जाता तो कुछ और भी ले आता। घर में न सब्जी हैन तेल।'' भागुली ने थके स्वर में कहा।

क्या समय आ गया है, उम्मेदसिंह सोचने लगा। इस साल ऐसा सूखा पड़ गया कि सारी बरसात खेतों से धूल उड़ती रही और सब्जियाँ तक भाभर की खरीदकर खानी पड़ी। और साल कुछ मिर्ची बेच लेते

थे, कुछ सब्जी हो जाती थी, इस साल मिर्ची भी नीचे की ही खरीदनी पड़ रही है। आखिर कोई करे भी तो क्या करे। जिसके एक-दो प्राणी दिल्ली लखनऊ में काम नहीं कर रहे, उनके पास तो सिवा 'रौ' पड़ने के कोई रास्ता नहीं है।

उम्मेदसिंह को चुप देख भागुली ने कहा, ''अच्छा चेला ऐसा करना, पधान के घट पर थैला रख देना और उनसे कह देना कोई आया तो भिजवा देंगे, नहीं तो सुबह ले आना। बाकी सामान अभी ले आना।''

रघुवा इस डर से कि मामा फिर न रोक लें, थैला उठाकर भाग छूटा।

....चुप्पी खोलते हुए भागुली ने ही बात शुरु की, ''ददा तुमको तो दिल्ली जाना होगा?''

उम्मेदसिंह हर साल जाड़ों में हल बाहने का काम पूरा कर नीचे की ओर चला जाता था। इस बार चूंकि खेतों में कुछ हुआ नहीं था इसलिए जुताई भी जल्दी ही शुरु हो गई थी। वह सोचे बैठा था कि काम निबटते ही चल दूँगा। वहाँ कुछ काम-धाम मिल गया तो ठीक, नहीं तो भाइयों के साथ दो-चार महिने रहकर लौट आऊँगा।

"तू मेरी चिन्ता न कर, कौन-सा लाम पर जाना है, चला जाऊँगा। तू बिल्कुल आराम कर?" उम्मेदसिंह ने उसे समझाया।

भागुली कुछ देर चुप रही। फिर बोली, "वो आ ही जाएँगे एक आद दिन में, तार तो मिल ही गया होगा? अभी तो आधे खेत बाकी हैं।"

"तू चिन्ता न कर, कल से बाकी खेत शुरु करेंगे। अभी कौन-सी

देर हो गई है, और साल तो इस समय काम शुरु ही होता था। हो जाएगा, सब हो जाएगा भुला," भागुली के बीमार पीले चेहरे पर फैली चिन्ताएँ उससे सहन नहीं हो पा रहीं थीं। उसने फिर आश्वासन दिया, सब हो जाएगा।

भागुली की आँखें फिर भर आई थीं। शायद खेतों की याद आते ही शिबिया उसके दिमाग पर छा गया था। पर उसने जल्दी ही स्वयं को नियन्त्रित कर लिया और कहने लगी, " यह तो हर साल का ही रोना है दाज्यू! अब तुम भी अपना घर-बार छोड़कर कब तक लगे रहोगे।"

उम्मेदसिंह ने उसे बीच में ही टोका, "अरे पगली, क्या बातें करती है। तेरे बच्चे बड़े हो रहे हैं, इतने होनहार हैं। एक-आध साल बाद ही देखना, सब ठीक हो जाएगा। "

अन्दर घुमड़ते आँसुओं से भागुली की आँखों के आगे धुँधला-सा छाने लगा था और काफी देर तक बोलना उसके लिए सम्भव न हो सका। बड़ी देर बाद अपने पल्लू से नाक साफ करते हुए उसने कहा, "ददा, इस रघुवा को सिखा देना थोड़ा-थोड़ा। अब से सीखने लगेगा तो एक-आद साल बाद ठीक से बैल चलाने आ जाएँगे।"

उम्मेदसिंह कुछ नहीं बोला, सिर्फ बीड़ी के कश पर कश मारता रहा। एक बार उसने भागुली की ओर देखा। उसका चेहरा अब बिल्कुल सामान्य और शान्त नजर आया। वह फिर से लेट गई थी और उसी की ओर देख रही थी।

मलखन = ऊपर की मंजिल घट = पनचक्की रौ = गहरी खाई

आपके जवाब के इन्तजार में– शिवसिंहनयाल
'अलारिप्पु' बी-6/62 पहली मंजिल सफदरजंग इन्क्लेव,
नई दिल्ली–29, दूरभाष : 6109327

ज्योति लेजर टाइप सेटिंग
दिल्ली–110092